जनसत्ता

बेलगाम जुबान

चुनाव प्रचार के दौरान सभाओं और रैलियों में हमारे माननीय, जनप्रतिनिधि, उम्मीदवार और बड़े से लेकर छुटभैये नेता जिस तरह की अभद्र भाषा का खुल कर और गर्व के साथ प्रयोग कर रहे हैं, वह शर्मनाक तो है ही, गंभीर चिंता का विषय भी है। राजनीति के ये कर्णधार खुले तौर पर आचार संहिता की धज्जियां उड़ा रहे हैं, धमकी भरे लहजे में वोट मांग रहे हैं और अनुकूल परिणाम नहीं मिलने पर नतीजे भुगतने की धमकी दे रहे हैं। खासतौर पर सरेआम महिलाओं के बारे में बेहद आपत्तिजनक टिप्पणी हतप्रभ कर देने वाली है। मंच से किसी को गाली देना बता रहा है कि देश को दिशा देने वालों का किस कदर पतन हो चुका है। सब कुछ मानो इस अंदाज में चल रहा है कि देखते हैं, क्या बिगाड़ता है चुनाव आयोग! यह चुनाव आयोग को खुली चुनौती है। यों अशिष्ट और गाली-गलौच वाली भाषा का इस्तेमाल हमारे राजनेताओं के लिए कोई शर्म या झिझक की बात नहीं है, क्योंकि यह इनकी संस्कृति का ऐसा अभिन्न हिस्सा बन चुका है जिसे सदनों के भीतर से लेकर बाहर तक लोग सुनते हैं। ताज्जुब तो इस बात का है कि ऐसे शब्दबाणों का इस्तेमाल करने वाले इस बात से जरा भयभीत नहीं हैं कि आचार संहिता लगी हुई है और उन्हें इसकी मर्यादा का पालन करना है।

लेकिन अब देश की सर्वोच्च अदालत ने चुनाव आयोग पर बदजुबानी करने वाले ऐसे नेताओं की खबर लेने के लिए दबाव बनाया है। आयोग ने अपनी तरफ से पहल करते हुए अब तक ऐसी कोई सक्रियता नहीं दिखाई थी जिससे कोई सख्त संदेश जाता। वरना सुप्रीम कोर्ट को यह कहने को क्यों मजबूर होना पड़ता कि 'आयोग अभी तक नोटिस ही जारी कर रहा है, कोई सख्त कार्रवाई क्यों नहीं कर रहा'! आयोग को लेकर सर्वोच्च अदालत की यह टिप्पणी काफी गंभीर है। इसके बाद उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ, समाजवादी पार्टी के नेता आजम खां, बसपा प्रमुख मायावती और केंद्रीय मंत्री मेनका गांधी पर कार्रवाई कर चुनाव आयोग ने सख्त संदेश देने की कोशिश की। हैरानी की बात तो यह है कि इनमें से किसी को भी अपने आपत्तिजनक बोल का अफसोस नहीं है। उल्टे योगी आदित्यनाथ गर्व के साथ सफाई दे रहे हैं कि 'अली-बजरंगबली' और 'हरा वायरस' जैसे शब्दों के पीछे उनका आशय क्या था। और बदजुबानी की पराकाष्ठा तो तब दिखी जब रविवार को हिमाचल प्रदेश भाजपा के अध्यक्ष सतपाल सत्ती ने कांग्रेस अध्यक्ष को मंच से ही गाली दे दी। सोशल मीडिया पर उनका यह वीडियो सब कुछ बता रहा है। इसी दिन कर्नाटक के प्रदेश भाजपा अध्यक्ष ने एक चुनावी सभा में अल्पसंख्यक समुदाय के खिलाफ जहर उगलने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

चुनाव प्रचार के दौरान जिस तरह से खुल कर अशिष्ट भाषा का इस्तेमाल होने लगा है, वह राजनीति में हो रहे पतन का संकेत है। एक तरफ तो राजनीतिक पार्टियां शुचिता की बात करती हैं और दूसरी ओर ऐसे बोल बोलने वालों के खिलाफ कोई कदम तक नहीं उठातीं, बल्कि शर्मनाक तो यह है कि हर दल ऐसे अभद्र शब्दों का प्रयोग करने वाले अपने नेता के बचाव में खुल कर उतर आता है। सवाल है क्या मंच से गाली देने वाले नेता को उसके पद पर बनाए रखा जाना चाहिए? एक महिला के लिए अश्लील शब्द बोलने वाले वरिष्ठ नेता के खिलाफ पार्टी को कठोर कार्रवाई नहीं करनी चाहिए? नेताओं की जुबान पर लगाम लगाने की जिम्मेदारी चुनाव आयोग की तो बनती ही है, राजनीतिक दलों को भी अपने ऐसे नेताओं को सभ्यता और शिष्टाचार पाठ पढ़ाना होगा।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध

आय से अधिक संपत्ति का सवाल पिछले काफी समय से देश की राजनीति में एक बड़ा मुद्दा बना हुआ है। आमतौर पर सभी राजनीतिक दल चुनावों के दौरान यह आश्वासन देते हैं कि उनकी सरकार बनने के बाद वैसे लोगों को कानून के कठघरे में खड़ा किया जाएगा, जिनके पास बेहिसाब संपत्ति है और वह आय के ज्ञात स्रोतों के मुकाबले काफी ज्यादा है। लेकिन शायद ही कभी बड़े रसूखदारों पर हाथ डाला जाता है। हालांकि जब कभी-कभार सरकार की नींद खुलती है तब यह जरूर लगता है कि अगर सरकारी तंत्र इस तरह की कार्रवाई करता है, तो इससे उसकी विश्वसनीयता बनी रहती है। मसलन, सोमवार को हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री ओम प्रकाश चौटाला के खिलाफ प्रवर्तन निदेशालय ने एक बड़ी कार्रवाई की है और उनकी पंचकूला और सिरसा में स्थित 3.68 करोड़ रुपए की संपत्तियों की कुर्की की।

विचित्र है कि बहुत सारे लोग सामान्य स्थितियों में अपनी आय को एक ऊंची उड़ान दे देते हैं, लेकिन उसके लिए अनिवार्य व्यवस्था यानी आयकर जमा कराना जरूरी नहीं समझते। जिम्मेदार नागरिक होने का दम भरने वाले आमतौर पर इस मसले पर अपने दायित्व को पूरा करने से छूट की इच्छा रखते हैं। खासतौर पर राजनीति की दुनिया में मौजूद कुछ नेता अपने आपको सारे कानूनों से ऊपर मानने लगते हैं और आय के ज्ञात स्रोतों से होने वाली आय के मुकाबले कई-कई गुना संपत्ति अर्जित कर लेते हैं। इसके पीछे कारण शायद यह होता है कि प्रवर्तन निदेशालय या संबंधित दूसरे महकमे इनके खिलाफ उतनी ही शिद्दत से कार्रवाई नहीं करते, जितना कि वे आम लोगों को कानून के कठघरे में खड़ा करने में चुस्ती दिखाते हैं। किसी नेता के खिलाफ कार्रवाई तभी होती है जब मामला काफी आगे बढ़ गया होता है। इस लिहाज से देखें तो हरियाणा में हरियाणा में ओम प्रकाश चौटाला की संपत्ति को कुर्क किया जाना एक बड़ा कदम है। हालांकि यह कोई चौंकाने वाली घटना नहीं है और देश के दूसरे राज्यों में भी कई नेता इस तरह के मामलों में कानूनी कार्रवाई की जद में हैं। ऐसे मामले अब काफी निकल कर सामने आ रहे हैं, जिनमें किसी नेता के चुनाव जीतने के बाद कुछ सालों के भीतर ही उनकी संपत्ति में भारी इजाफा हो जाता है। जाहिर है, यह बढ़ोतरी अगर केवल उनकी घोषित आय के बूते नहीं होती है तो इसके पीछे भ्रष्ट तरीके से अर्जित धन का ही मामला हो सकता है।

करीब डेढ़ साल पहले सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र सरकार के रुख और उन नेताओं को लेकर काफी नाराजगी जताई थी, जिनकी संपत्ति दो चुनावों के बीच पांच सौ फीसद तक बढ़ गई। यह बेवजह नहीं है कि एक तरफ देश की संपत्ति में बढ़ोतरी की खबर आती है तो इसके साथ यह तथ्य भी उजागर होता है कि पिछले कुछ सालों के दौरान देश की दौलत में इजाफे का ज्यादातर हिस्सा सबसे अमीर एक फीसद वर्ग की झोली में गया है। अंदाजा लगाया जा सकता है कि बाकी जनता के हिस्से क्या और कितना आता होगा। जरूरत इस बात की है कि एक ऐसा स्थायी तंत्र बने जो समय-समय पर सांसदों, विधायकों और उनके सहयोगियों की संपत्ति पर नजर रखे और उनके आंकड़े जमा करे। आय से अधिक संपत्ति के किसी भी मामले की रिपोर्ट तैयार की जाए और उस पर जरूरी कार्रवाई की जाए। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि सांसद या विधायक अगर आय से अधिक संपत्ति जमा करते हैं और उन्हें कानूनी कार्रवाई से घोषित-अघोषित तौर पर राहत मिलती है तो भ्रष्टाचार के बाकी मसलों के खिलाफ किसी भी लड़ाई में कामयाबी नहीं मिल सकती।

कल्पमेधा

उस साहस को जानने का अभ्यास करो जिसमें सच्चाई जानने की हिम्मत है, जीवन के सत्य को बताने की हिम्मत है। समस्त विश्व में उसका कोई हनन नहीं कर सकता।

-विवेकानंद

अस्तित्व का संकट और चुनौतियां

भारत डोगरा

बीसवीं शताब्दी की एक खास विशेषता यह है कि इस शताब्दी के अंत तक पंहुचते-पहुंचते अनेक मानव निर्मित कारणों से ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो चुकी हैं जिनसे पृथ्वी पर मानव जीवन व अनेक अन्य तरह के जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। मनुष्य ने अपने कार्यों से अपने अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया और साथ ही बेकसूर जीवों के अस्तित्व को भी।

इतिहास के विभिन्न दौरों में न्याय, समता और अमन-शांति चाहने वाले लोग वैकल्पिक राजनीति, सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था की तलाश करते रहे हैं। आध्यात्मिक सोच ने इन विकल्पों की तलाश को मानव जीवन की सार्थकता से जुड़े शाश्वत सवाल उठा कर और समृद्ध किया। लोकतंत्र के विकास से इस सोच में नए आयाम जुड़े। हाल के वर्षों में, विशेषकर पिछले तीन दशकों में, इस सोच का संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह रहा है कि अब धरती पर जीवन के अस्तित्व मात्र का संकट विकट हो रहा है और इस कारण विकल्पों की तलाश और भी बहुत जरूरी हो गई है। हालांकि एक तरह से यह सोच पचहत्तर साल वर्ष पहले ही आरंभ हो गई थी जब पहला परमाणु बम हिरोशिमा में गिराया गया था। इसके बाद अस्तित्व का खतरा परमाणु हथियारों के संदर्भ में ही चर्चित होता था। पर जैसे-जैसे पर्यावरण की अनेक गंभीर समस्याओं और विशेषकर जलवायु बदलाव के संकट की गंभीरता स्पष्ट हुई तो अस्तित्व के संकट को अधिक व्यापक संदर्भ में पहचाना जाने लगा। इस संकट की व्यापकता और गंभीरता वर्ष 1990 तक स्पष्ट हो चुकी थी।

वर्ष 1992 में विश्व के डेढ़ हजार से ज्यादा वैज्ञानिकों ने (जिनमें उस समय जीवित नोबल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिकों में से लगभग आधे वैज्ञानिक भी सम्मिलित थे) एक बयान जारी किया था। इसमें कहा गया था, 'हम मानवता को इस बारे में चेतावनी देना चाहते हैं कि भविष्य में क्या हो सकता है। पृथ्वी और उसके जीवन की व्यवस्था जिस तरह हो रही है उसमें एक व्यापक बदलाव की जरूरत है, अन्यथा बहुत दुख-दर्द बढ़ेंगे और हम सबका घर यह पृथ्वी इतनी बुरी तरह तहस-नहस हो जाएगी कि फिर उसे बचाया नहीं जा सकेगा।'

इन वैज्ञानिकों ने यह भी कहा कि वायुमंडल, समुद्र, मिट्टी, वन और जीवन के विभिन्न रूपों पर तबाह हो रहे पर्यावरण का बहुत दबाव पड़ रहा है। वर्ष 2100 तक पृथ्वी के विभिन्न जीवन रूपों में से एक तिहाई लुप्त हो सकते हैं। मनुष्य की वर्तमान जीवन-पद्धति के अनेक तौर-तरीके भविष्य में सुरक्षित जीवन की संभावनाओं को नष्ट कर रहे हैं और इस जीती-जागती दुनिया को इतना बदल सकते हैं कि जिस रूप में जीवन को हमने जाना है, उसका अस्तित्व ही कठिन हो जाए। इन प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों ने जोर देकर कहा कि प्रकृति की इस तबाही को रोकने के लिए बुनियादी बदलाव जरूरी है।

बीसवीं शताब्दी की एक खास विशेषता यह है कि इस शताब्दी के अंत तक पहुंचते-पहुंचते अनेक मानव निर्मित कारणों से ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो चुकी हैं जिनसे पृथ्वी पर मानव जीवन व अनेक अन्य तरह के जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। मनुष्य ने अपने कार्यों से अपने अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया और साथ ही बेकसूर जीवों के अस्तित्व को भी। अब चाहे यह खतरा जलवायु तेजी से बदलने के रूप में उत्पन्न हुआ हो, ओजोन परत तेजी से लुप्त होने के रूप में हो, परमाणु हथियारों के विशालकाय भंडार के रूप में या अन्य तरह का हो।

वर्ष 1992 की चेतावनी के पच्चीस साल पूरे होने पर एक बार फिर विश्व के बहुत जाने-माने वैज्ञानिकों ने वर्ष 2017 में फिर एक अपील जारी की। इस अपील ने पहले से भी अधिक ध्यान खींचा। इस पर एक सौ अस्सी देशों के साढ़े तेरह हजार वैज्ञानिकों और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किए थे। इसमें कहा गया था कि जिन गंभीर समस्याओं की ओर वर्ष 1992 में ध्यान दिलाया गया था, उनमें से अधिकांश समस्याएं पहले से अधिक विकट हो रही हैं और उनके समाधान के प्रयास में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई है। केवल ओजोन परत संबंधी समस्या में कुछ सफलता मिली है। अस्तित्व को संकट में डालने वाली अन्य समस्याएं पहले की तरह गंभीर स्थिति में मौजूद हैं या फिर उनकी स्थिति और विकट हुई है।

जलवायु बदलाव के कारण कई तरह की विकट समस्याएं अगले कुछ दशकों में उग्र रूप ले सकती हैं। समुद्रों का जल-स्तर ऊपर उठने से कई टापू देश लुप्त तक हो सकते हैं, कई घनी आबादी वाले शहर उजड़ सकते हैं और एक-तिहाई तक कृषि भूमि बुरी तरह प्रभावित हो सकती है। बदलती जलवायु के कारण अनेक प्रजातियां लुप्त हो सकती हैं। अनेक नई बीमारियां फैल सकती हैं या पहले से मौजूद रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है। अनेक प्राकृतिक आपदाएं भी पहले से और विकट हो सकती हैं। यह समस्या इसलिए भी गहराई है कि जिन अधिक विकसित व धनी देशों की इस पर्यावरणीय संकट में प्रमुख जिम्मेदारी मानी गई है और जिनके पास इसे सुलझाने के लिए आर्थिक संसाधन थे, उन्होंने पहले तो कुछ बड़े वादे किए, लेकिन बाद में पीछे हटने लगे।

पिछली शताब्दी में धरती पर जीवन को सबसे ज्यादा खतरे में डाला है तो परमाणु हथियारों ने। बीसवीं शताब्दी में दो विश्व युद्ध हुए, जिनमें लगभग छह करोड़ लोग मारे गए। इसके अतिरिक्त जो अन्य विनाशकारी युद्ध हुए (वियतनाम, कोरिया, खाड़ी क्षेत्र के युद्ध आदि) या विभिन्न देशों और क्षेत्रों में जो आंतरिक हिंसा हुई (जैसे कंबोडिया, रवांडा, इंडोनेशिया, चीन व नाइजीरिया में, भारत के बंटवारे के समय व बाद में बांग्लादेश के नए देश के रूप में उदय होने से पहले) तो इन सब वारदातों में भी लगभग चार करोड़ लोग मारे गए। इस तरह हिंसा की व्यापक घटनाओं में बीसवीं शताब्दी में लगभग दस करोड़ लोग मारे गए या औसत लगाएं तो हर वर्ष लगभग दस लाख लोग मारे गए। मानवीय विकास रिपोर्ट के अनुसार इस समय केवल परमाणु हथियारों के भंडार की विनाशक शक्ति बीसवीं शताब्दी के तीन सबसे बड़े युद्धों के कुल विस्फोटकों की शक्ति से सात सौ गुना ज्यादा है। इसके अलावा परंपरागत हथियारों की विस्फोटक शक्ति भी इतनी बढ़ा दी गई है कि कुछ ही घंटों के युद्ध में लाखों व्यक्तियों को मारा जा सकता है। रासायनिक और जैविक हथियारों पर प्रतिबंध होने के बावजूद इन हथियारों का जो जखीरा कुछ देशों के पास है, वह और बड़ा खतरा है। यदि इस तरह के खतरनाक हथियारों के जखीरे बढ़ते गए और उन्हें रोकने और खत्म करने की कोई सुरक्षित और निश्चित व्यवस्था नहीं की गई तो ये बेहद विनाशक हथियार एक दिन धरती के प्राणियों के लिए खतरा बन सकते हैं।

बीसवीं शताब्दी में विज्ञान और तकनीक की आश्चर्यजनक प्रगति के बावजूद इस शताब्दी के अंतिम वर्षों में इतनी अधिक, भीषण और पेचीदा समस्याओं से दुनिया घिरी हुई है कि गहरे और बुनियादी बदलाव की जरूरत अब पहले से भी अधिक लग रही है। यूनीसेफ, विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की रिपोर्टों और विशेषज्ञों तक ने इस संभावना को स्वीकार किया है कि आने वाले कुछ दशकों में विश्व में पर्यावरणीय विनाश तेजी से बढ़ सकते हैं। विश्व स्वास्थ्य रिपोर्ट में बताया है कि मानव जाति छूत की बीमारियों के विश्व स्तर के संकट की कगार पर है। कोई भी देश इनसे सुरक्षित नहीं है। इसी रिपोर्ट में कहा गया है कि कई जैव-प्रतिरोधी दवाइयों के बेअसर होने के कारण इन बीमारियों के इलाज में मुश्किलें बढ़ती जा रही हैं।

विश्व इतिहास के किसी भी अन्य दौर की अपेक्षा आज न्याय, समानता, अमन-शांति और पर्यावरण रक्षा के आंदोलनों व अभियानों का एक-दूसरे के नजदीक आना और मिल कर काम करना जरूरी है। विश्व की बड़ी समस्याओं व इन आंदोलनों व अभियानों के प्रति जन-चेतना का प्रसार भी व्यापक स्तर पर होना जरूरी है ताकि लोगों में जागरूकता बढ़ सके। तभी वैकल्पिक व्यवस्था की राह निकलेगी जो अस्तित्व के संकट से समाधान की ओर ले जाएगी।

नया रास्ता

मोनिका अग्रवाल

भीड़ के साथ चलना और भीड़ से अलग चलना- दो अलग बातें हैं। ज्यादातर लोग भीड़ के साथ चलने वाले होते हैं। भीड़ से अलग विरले ही चल पाते हैं। हमारे समाज की बनी-बनाई मान्यताओं को मान कर चलना कितना आसान है और उन्हें तोड़ कर, इसी समाज में रहना कितना कष्टदायक है! समाज ऐसे लोगों को शुरू में स्वीकार करे या नहीं करे, पर ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व वाले लोग ही आखिर में याद किए जाते हैं जो पूर्व स्थापित परंपराओं को न अपना कर अपने ही प्रतिमान स्थापित करते हैं। भीड़ से अलग भीड़ से जुदा।

ग़ालिब का एक शेर है- 'वैसे तो दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे/ कहते हैं कि ग़ालिब का है अंदाजे-बयां और'! आजकल जहां-तहां विज्ञापन, सोशल मीडिया भी यही या इससे मिलते-जुलते संदेश प्रसारित करता है- 'चुनो अलग रास्ता! अपनी राह खुद बनाओ'! कितनी सटीक बात है। झुंड में तो भेड़-बकरियां रहती हैं। शेर अकेला ही घूमता है। शायद इसीलिए यह कहा जाता है कि जनता क्या है, भेड़-बकरियों की तरह जो किसी की हांक पर जहां-तहां को चलती जाएगी। यानी बिना दिमाग का इस्तेमाल किए 'शेर' का राज कायम रखने को। जंगल में राज चाहे 'शेर' का हो, वह 'जंगल-राज' ही कहा जाता है।

आज हमारे समाज में कितने ही ऐसे रिवाज हैं, जो जब बनाए गए थे, तब के समय और परिवेश में उनका महत्त्व था। पर आज उससे बिल्कुल बदली हुई परिस्थितियों में भी हम उनका ज्यों का त्यों पालन करते हैं। मसलन, रात को झाड़ू नहीं लगाना, रात को नाखून नहीं काटना। असल में ये नियम तब थे, जब बिजली नहीं हुआ करती थी। रात को झाड़ू लगाने से कोई कीमती चीज कूड़े में जा सकती थी। या फिर नाखून काटने से अपर्याप्त रोशनी में अंगुलियां कट सकती थीं।

दुनिया मेरे आगे

मगर हम लकीर के फकीर हैं। इसलिए बिना दिमाग लगाए परंपरा को निभाते चले जाते हैं। उदाहरण के तौर पर हम सब भारत में कूड़े की समस्या को दिखा सकते हैं। पर क्या कभी हमने सोचा है कि उस प्रदूषण में हम सब चाहे-अनचाहे कितनी भागीदारी करते हैं! बस से उतरे, टिकट फाड़ी और मरोड़ कर वहीं फेंक दी। पान खाया, वहीं थूक दिया। केला खाया, छिलका कहीं भी फेंक दिया। चाट खाई, पत्ते धीरे-से वहीं एक तरफ सरका दिए। भंडारा किया, पत्तलें वहीं फेंक कर एक ढेर खड़ा कर दिया।

न जाने ऐसे कितने काम हम सब जाने-अनजाने करते हैं। दूसरी ओर हम सब पाश्चात्य शैली को बहुत मन से अपनाते हैं तो क्यों नहीं हम सफाई के लिए भी विदेशी परंपरा को आत्मसात करते हैं? अगर हम ऐसा ही विदेश में करें तो भारी जुर्माना देना पड़ेगा। हममें से कोई भी भारतीय जब विदेश यात्रा पर जाता है तो पूरी तरह से इस बात का ध्यान रखता है। यानी हम वहां जाकर सुधर जाते हैं। तो फिर यही दृष्टिकोण अपने देश में क्यों नहीं अपना सकते? कहावत है, 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता'! पर बूंद-बूंद से तो समंदर बनता है। अगर हम सब भीड़ की तरह न करके अपना कचरा खुद संभाल कर फेंकें, तो सोचिए भला प्रदूषण कैसे होगा?

जीवन में इसी तरह किसी भी क्षेत्र में बने-बनाए रास्ते पर चलना बहुत आसान है। जंगल काट कर पगडंडी तैयार करना बहुत ही कठिन कार्य है। ऐसा करने से ही न केवल हमें रचनात्मक संतुष्टि मिलती है, बल्कि आपकी अपनी पहचान भी स्थापित होती है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए या भीड़ से अलग दिखने के लिए लीक से हट कर चलना होगा। इसके लिए इंतजार किस बात का? जीवन में कभी समझौता नहीं करें। हम अपने भाग्य के निर्माता और विधाता खुद हैं। हम सरल बनें, माफ करना सीखें। सबसे जरूरी है कि सफलता पाने के लिए अपनी सुविधा की जंजीरों को तोड़ डालें।

बंधे-बंधाए ढर्रे को अपनाना, पुरानी लीक पर चलना क्या सफलता की गारंटी हो सकती है? नहीं! इस बात की कोई गारंटी कैसे ले सकता है कि यह नुस्खा ही सवश्रेष्ठ है और हम सफल कहलाएंगे। किसी भी काम को जिसे आप सफलतापूर्वक पूरा कर चुके हों, उसे और बेहतर कैसे बनाया जा सकता है? बस अपने क्षेत्र में सतत प्रयत्नशील रहना जरूरी है। आज सार्वजनिक जीवन और कार्यक्षेत्र में जितनी महिलाएं दिख रही हैं, उनमें से कई पहले महिलाओं के लिए निषिद्ध क्षेत्र रहे हैं। उन सबमें किसी न किसी महिला ने पहली बार कदम रखा होगा। उसके बाद वह शृंखला कायम हो गई होगी और उन क्षेत्रों में महिलाओं के लिए रास्ते ही खुल गए। इस प्रकार कुछ अलग करके हम समय की स्लेट पर खुद अपने हस्ताक्षर अंकित कर सकते हैं। आवश्यकता है बस पहल शक्ति की, शुरुआत की। कभी हम भी अपने भीतर के कोलंबस को जगाएं और नए रास्तों की खोज करें। 'लीक पर वे चलें जिनके कदम थके और हारे हैं/ हमें तो बस अपने बनाए पथ ही प्यारे हैं।'

ईवीएम की आड़

ईवीएम पर भरोसा नहीं, ईवीएम के साथ छेड़छाड़ हो सकती है- ऐसे आरोपों-संदेहों का जिन्न चुनाव देख कर फिर बोतल से बाहर निकल आया है। मजे की बात है कि ईवीएम पर भरोसा उन नेताओं को ही नहीं है जो खुद ईवीएम से निर्वाचित होकर आज सांसद, विधायक और कुछ तो मुख्यमंत्री बने घूम रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट ने 21 दलों द्वारा दी गई याचिका पर सुनवाई करते हुए चुनाव आयोग को सभी विधानसभा क्षेत्रों में हर बूथ पर वीवीपैट से मिलान का आदेश दिया था जिस पर चुनाव आयोग का कहना था कि ऐसा करने से परिणाम आने में देरी होगी। इसे कोर्ट ने मान भी लिया और हर विधानसभा क्षेत्र में पांच बूथों पर आकस्मिक वीवीपैट (वोटर वेरिएबल पेपर ऑडिट ट्रोल) मिलान की बात कही। चुनाव आयोग ने भी इस पर अपनी सहमति दे दी है।

वैसे सुप्रीम कोर्ट पहले भी स्पष्ट कर चुका है कि उसे चुनाव आयोग पर कोई संदेह नहीं पर राजनीतिक दलों के संदेह का भी समाधान होना चाहिए। इसके लिए चुनाव आयोग ने 3 जून 2017 को ईवीएम हैक करने की खुली प्रतियोगिता भी रखी थी पर विडंबना देखिए जो चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे ईवीएम हैक हो सकती है, ईवीएम का प्रयोग ठीक नहीं, ईवीएम जिस देश में बनता है वह खुद उसका प्रयोग नहीं करता, ईवीएम में कोई भी बटन दबाओ वोट एक खास पार्टी को जा रहा है- ऐसे तर्क देने वालों में से कोई वहां मौजूद नहीं था। यहां तक कि दिल्ली विधानसभा में अमेजन से 'डमी' ईवीएम खरीद कर हैकिंग का नाटक दिखाने वाले आम आदमी पार्टी के उत्साही नेता भी वहां मौजूद नहीं थे। वहां तो कुछ ऐसे नेता हाजिर थे जिनकी पार्टी देश में अपने अंतिम सांसें गिन रही है पर वे भी यह कह कर मुकर गए कि वे आयोग के 'ईवीएम हैकथॉन' में भाग लेने नहीं आए बल्कि ईवीएम की कार्यप्रणाली देखने आए हैं! इससे बड़ा मजाक क्या होगा!

बहरहाल, जनता होशियार हो चुकी है। ईवीएम पर संदेह जताने वाले नेताओं के सुप्रीम कोर्ट जाने से कुछ दिन पहले ही सोशल मीडिया पर प्रथम चरण के चुनाव के पूर्व ही संदेश धड़ाधड़ भेजे जा रहे थे कि हारे तो ईवीएम हैक, ईवीएम से छेड़छाड़ है और जीते तो यह महागठबंधन की ताकत है! जनता भी अब समझ चुकी है कि कैसे नेता जगह, समय और लोग देख कर रंग बदल लेते हैं। जहां कुछ राज्यों में उनके लिए ईवीएम ठीक है, कुछ उपचुनाव और विधानसभा चुनाव में ईवीएम गंगा की तरह पवित्र निकली तो वहीं दूसरी ओर लोकसभा चुनाव के प्रथम चरण का मतदान ही हुआ है तो ऐसा क्या हो गया कि अभी से उसको बदनाम करने लगे? क्या प्रथम चरण में ईवीएम का विरोध करने वाले नेताओं को हार का डर सताने लगा है?

कितना हास्यास्पद है कि जो लोग ईवीएम पर हल्ला मचा रहे हैं या मतपत्र से चुनाव की मांग कर रहे हैं और जो पार्टी इन सबकी अगुवाई कर इन दिनों पूरे देश को न्याय दिलाने का ढिंढोरा पीट रही है उसने कहीं भी न तो किसी चुनावी भाषण में और न अपने घोषणापत्र में मतपत्र से चुनाव करने की बात कही है। मध्यप्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़ में चुनाव जीते तो किसी ने एक सवाल नहीं किया और ईवीएम पर न कोई शक जताया। लगता है, नेताओं ने आपस में ही नारा बना लिया है कि हार की जिम्मेदारी से बचना है तो ईवीएम पर हार का ठीकरा फोड़ना है!

● *देवानंद राय, दिल्ली*

जुबान पर लगाम

इन दिनों लोकसभा चुनाव के प्रचार में जिस तरह नेताओं की जुबान फिसलती दिखाई दे रही है उस पर उच्चतम न्यायालय के दखल के बाद मजबूरन चुनाव आयोग को बड़ा कदम उठाना पड़ा। उसे उन जबानों पर लगाम लगानी पड़ी जो बेलगाम हो रही थीं। नेताओं के अमर्यादित बड़बोलेपन पर कार्रवाई न करने की वजह से चुनाव आयोग पर भी उंगली उठाई जा रही थी।

पूर्व में मुख्य निर्वाचन आयुक्त रहे टीएन शेषन की ऐसे समय याद आती है जब उन्होंने राजनीतिक दलों को चुनाव आयोग की शक्ति का एहसास कराया था। उन्होंने ऐसे फैसले लिए जो आज एक नजीर बन गए हैं। मौजूदा चुनाव आयोग को पूर्व में किए गए कड़े फैसलों से सीख लेनी चाहिए न कि बेबस दिखना चाहिए। उसे किसी पार्टी के अधीन काम करने जैसे इल्जाम से बचना चाहिए। आयोग द्वारा कुछ नेताओं के चुनाव प्रचार करने पर कुछ दिन का प्रतिबंध लगाना एक सराहनीय कदम है। इससे जनता में लोकतंत्र के प्रति विश्वास बना रहेगा।

● *मोहम्मद आसिफ, जामिया नगर, दिल्ली*

नैतिक जिम्मेदारी

गर्मी का मौसम आते ही गली-मोहल्लों में टैंकरों और नलों के आगे लगी लंबी कतारें पानी के अभाव की ओर इशारा करती हैं। यह समस्या दुनिया में अब हर जगह दिखाई देने लगी है मगर अफसोस, हम अब भी नहीं चेते हैं। यहां एक बात तो समझने वाली है कि हम पानी को बना नहीं सकते। इस कारण जितना पानी इस पृथ्वी पर है, हमें उसका उपयोग बहुत सोच-समझ कर करना चाहिए नहीं तो यह समस्या दिन प्रतिदिन और बढ़ेगी। इसके लिए हमें छोटे-छोटे प्रयास भी करने चाहिए तभी कुछ हो सकता है अन्यथा सिर्फ होर्डिंग लगा देने से कुछ नहीं होगा। एक बात और, कि यह हमारी नैतिक जिम्मेदारी भी है। यह सिर्फ कोई नियम या कानून बनाने से नहीं हो जाएगा।

● *प्रेरणा, भोपाल*

पक्षियों को पानी

इन दिनों भीषण गर्मी का दौर शुरू हो चुका है और कई जगह पारा 40 डिग्री से ऊपर पहुंच गया है। नदी-नाले सूखने से पानी की किल्लत बढ़ने लगी है। ऐसी भीषण गर्मी में पशु-पक्षियों को भी पानी के लिए काफी तकलीफ उठानी पड़ती है। हम तो फिर भी प्यास लगने पर कहीं से बोतलबंद पानी खरीद लेते हैं पर इन पक्षियों की पानी के अभाव में मौत भी हो जाती है। इसके मद्देनजर क्यों न हम गर्मियों में अपनी छत, दालान, बालकनी या बगीचे में कुछ सकोरों या अन्य पात्रों में पक्षियों के लिए दाना-पानी की व्यवस्था करें। हमारे इस छोटे से प्रयास से कई पक्षियों की जान बच सकती है।

● *संजय डागा, हातोद, मध्यप्रदेश*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com